भारतीय जीवनदर्शन में पुरुषार्थ-चतुष्टय और वर्तमान समाज में उसका महत्व

डॉ. विश्वजित् बर्मन

सहायक अध्यापक, संस्कृत विभाग

महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

शोध सारांश

भारतीय जीवनदर्शन में पुरुषार्थ-चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मानव जीवन के चार मूल लक्ष्य हैं। धर्म जीवन को नैतिक शिक्षा और सामाजिक दिशा देता है, अर्थ भौतिक स्थिरता और समाज में न्याय सुनिश्चित करता है, काम इच्छाओं और सृजनात्मकता के माध्यम से मानसिक और भावनात्मक सन्तुलन प्रदान करता है एवं मोक्ष जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है, जो आत्मबोध और आन्तरिक शान्ति की प्राप्ति का मार्ग दिखाता है। प्राचीन ग्रन्थों में इन चारों पुरुषार्थों का सन्तुलित आचरण व्यक्तिगत कल्याण के अतिरिक्त सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक सुदृढ़ता के लिए किया गया है। वर्तमान में समाज में व्यप्त भोगवाद, नैतिक अधोपतन, स्वार्थपरता जैसी समस्याएँ व्यक्ति को मानसिक रूप से अशान्त एवं नीरस बना रहे है। ऐसे में भारतीय जीवन दर्शन आधारित पुरुषार्थ-चतुष्टय जीवन को नैतिक, भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सन्तुलित और उद्देश्यपूर्ण बना सकता है। इसका आचरण व्यक्ति और समाज दोनों में सार्वक विकास और सामग्रिक स्थिरता सुनिश्चित कर सकता है। अतः यह केवल प्राचीन जीवन दर्शन का सिद्धान्त नहीं, बल्कि आधुनिक जीवन में भी मानवता, न्याय, सृजनशीलता और शान्ति का मार्गदर्शक है।

प्रस्तावना

पुरुषार्थ शब्द पुरुष एवं अर्थ दोनों शब्दों के समन्वय से बना है। 'पुरि शेते इति पुरुषः' अर्थात् शरीर में रहनेवाला जीव संज्ञक, विवेकशील चैतन्ययुक्त तत्त्व को पुरुष कहते है। 'यतः सर्वप्रयोजनसिद्धिः स अर्थः'[1] जिससे सभी प्रयोजन सिद्ध होती है वह अर्थ है। अतः पुरुषस्य अर्थः पुरुषार्थः अर्थात् जीव संज्ञक विवेकशील पुरुष का उद्देश्य अथवा लक्ष्य ही पुरुषार्थ है। यह पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप चार

[1] **नीतिवाक्यामृतम्, अर्थसमुद्देशः, १**

सिद्धान्तों से पूर्ण होने से इसे पुरुषार्थचतुष्टय कहते है। इन्हीं चार सिद्धान्तों में समग्र मानवता का लक्ष्य एवं उद्देश्य सुनिश्चित् रहता है। जो जीवन को सांसारिक या भौतिक अनुभवों से अतिरिक्त सामग्रिक, उद्देश्यपूर्ण और सन्तुलित जीवन यात्रा प्रशस्त कराता है। धर्म का आशय कर्तव्यों से है, जो व्यक्ति को नैतिक और सामाजिक नियमों के पालन की प्रेरणा देता है। यह बताता है कि जीवन का सञ्चालन केवल स्वार्थ से नहीं, बल्कि नीति, सत्य और न्याय के आधार पर होना चाहिए। अर्थ पुरुषार्थ व्यक्ति को सिखाता है कि धन का उपार्जन आवश्यक तो है, परन्तु वह धर्मसम्मत और न्यायपूर्ण होना चाहिए। अन्यथा वही अर्थ विनाश का कारण बन जाता है। काम पुरुषार्थ हमें यह शिक्षा देता है कि इच्छाएँ और भोग स्वाभाविक हैं, परन्तु उनका संयम और मर्यादा में रहना ही जीवन की सुन्दरता है। इन्द्रियसुख यदि धर्म और विवेक से नियन्त्रित न हो तो व्यक्ति पतन की ओर जाने लगता है। मोक्ष पुरुषार्थ जीवन को आत्मिक शान्ति और परम ज्ञान की दिशा में ले जाता है। मोक्ष का अर्थ केवल मृत्यु के बाद मुक्ति नहीं, बल्कि जीवनावस्था में ही आत्मबोध और शान्ति प्राप्त करना है।

प्राचीन काल से भारतीय जीवनदर्शन में ये चार पुरुषार्थ व्यक्तिगत कल्याण के अतिरिक्त सामाजिक संरचना, संस्कृतिक सुदृढता और धार्मिक अनुष्ठानों का आधार के रूप में प्रतिष्ठित है। आधुनिक युग में जब मनुष्य सभी प्रकार के सुख-सुविधाओं के बावजूद मानसिक तनाव और आत्मिक अशान्ति से ग्रस्त है तब पुरुषार्थ चतुष्टय की प्रासङ्गिकता और भी अधिक हो जाती है। क्योंकि पुरुषार्थ चतुष्टय का समन्वय जीवन को सम्पूर्ण बनाता है। धर्मानुसार अर्थ की प्राप्ति, अर्थ से संयमित काम की पूर्ति और अन्ततः मोक्ष की प्राप्ति यही भारतीय जीवनदर्शन का सार है। अतः वर्तमान समय में भी पुरुषार्थ-चतुष्टय मनुष्य को भौतिक प्रगति के साथ नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग भी प्रशस्त करेगा।

पुरुषार्थ चतुष्टय एवं भारतीय जीवन दर्शन

भारतीय जीवनदर्शन में पुरुषार्थ चतुष्टय को मानव जीवन के चार मूल उद्देश्यों के रूप में स्वीकार किया है। इन चारों पुरुषार्थों का दार्शनिक आधार अत्यन्त गहन और सन्तुलित है, जो व्यक्ति और समाज दोनों के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। वैदिक काल में मानव जीवन को भौतिक सुखों के अतिरिक्त एक आध्यात्मिक यात्रा के रूप में देखा गया है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध मन्त्र "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"[2] इसका

[2] ऋग्वेद - ९.६३.५

तात्पर्य है, हम ऐसा आचरण करें, ऐसा ज्ञान, संस्कृति और सदाचार फैलाएँ कि सम्पूर्ण विश्व आर्य अर्थात् श्रेष्ठ, सभ्य और सुसंस्कृत बन जाए। यह मानवता के कल्याण का सार्वभौमिक सन्देश है। यह बताता है कि कर्म के माध्यम से संसार को श्रेष्ठ बनाना ही सच्चा धर्म है। इस प्रकार धर्म को जीवन का नियामक, अर्थ और काम को उसके साधन, तथा मोक्ष को परम लक्ष्य माना गया। उपनिषदों में पुरुषार्थों का आधार आत्मविद्या बताया गया है "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः"[3]। अर्थात् आत्मज्ञान केवल बौद्धिक अध्ययन या तर्क से नहीं मिलता, यह अनुभूति और आत्मशुद्धि से प्राप्त होता है। जब व्यक्ति की आन्तरिक पावित्रता, भक्ति और आत्मसमर्पण पूर्ण होता है, तभी परमात्मा स्वयं को उसके समक्ष प्रकट होता है। यहाँ आत्मबोध को मानव जीवन की सर्वोच्च प्राप्ति माना गया है, क्योंकि जब तक मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता, तब तक उसकी सभी लौकिक उपलब्धियाँ अधूरी रहती हैं।

भगवद्गीता में सभी पुरुषार्थों को व्यावहारिक रूप से एक-दूसरे से जोड़ा गया है। श्रीकृष्ण ने धर्म को कर्तव्य के रूप में परिभाषित किया है। मनुष्य को अपने स्वभाव और स्थिति के अनुसार अपना कर्तव्य ही करना चाहिए। दूसरों का धर्म या कार्य भले ही आकर्षक लगे, पर वह हमारे लिए उपयुक्त नहीं होता। अपने धर्म का पालन करते हुए यदि कष्ट या मृत्यु भी मिले, तो वह भी श्रेयस्कर है।[4] अर्थ को लोककल्याण का साधन बताते हुए काम को ईश्वरार्पण की भावना से नियन्त्रित करने की शिक्षा दिया है। जब मनुष्य धर्मपूर्वक कर्म करता है, तब अर्थ और काम दोनों ही साधन बन जाते हैं बाधक नहीं।[5] अन्ततः मोक्ष को आत्मज्ञान और निष्काम कर्म की परिणति बताया है कि, कामनाओं का दमन नहीं, बल्कि उनका ईश्वरार्पण ही सच्चा संयम है।[6] जब व्यक्ति यह समझ लेता है कि आत्मा अमर, अखण्ड और सर्वव्यापी है तब उसके

---

[3] कठोपनिषद् - १.२.२३

[4] स्वधर्मे निधनं श्रेयः। भगवद्गीता - ३.३५

[5] काम्येषु कर्मसु कौन्तेय सदा सञ्ज्ञायुक्तः भव। भगवद्गीता - ३.९

[6] मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्यात्मचेतसा। निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ भगवद्गीता - ३.३०

भीतर न शोक रहता है, न इच्छा। वह सबमें उसी परमात्मा को देखता है। ऐसे सन्तुलित, प्रसन्न और समदर्शी व्यक्ति को ही सच्ची भक्ति की अनुभूति होती है। यही परम पुरुषार्थ है। इसलिए कहते है–

"ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।"[7]

पूर्वमीमांसा में धर्म को प्रधान पुरुषार्थ मानता है। जैमिनि के "अथातो धर्मजिज्ञासा"[8] से स्पष्ट होता है कि धर्म ही वेदविहित कर्तव्यों का आधार है। इसके विपरीत, वेदान्त दर्शन में मोक्ष को सर्वोच्च पुरुषार्थ के रूप में घोषित किया गया है "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"[9]। तदनुसार जब मनुष्य धर्म, अर्थ और काम की सीमाओं को पहचान लेता है, तब वह आत्मसाक्षात्कार की दिशा में अग्रसर होता है। न्याय-वैशेषिक दर्शन पुरुषार्थ को दुःखनिवृत्ति और आनन्दप्राप्ति के रूप में व्याख्यायित करता है। सांख्य दर्शन भी यही कहता है कि अज्ञान ही बन्धन का कारण है और ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है।[10] इस प्रकार प्रायः सभी दर्शनों का मत है कि धर्म, अर्थ और काम मनुष्य के लौकिक जीवन के लिए आवश्यक हैं, किन्तु इनका परम लक्ष्य मोक्ष अर्थात् आध्यात्मिक मुक्ति ही होना चाहिए।

महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है–"धर्मस्य मूलं अर्थः, अर्थस्य मूलं राज्यम्।[11]" यह वाक्य इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि धर्म, अर्थ और काम का समन्वय ही समाज की स्थिरता और राज्य की प्रगति का मूल कारण है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी धर्म और अर्थ के परस्पर सम्बन्ध को रेखाङ्कित किया गया है।

पुरुषार्थ चतुष्टय की सङ्कल्पना भारतीय जीवन दर्शन की समन्वयवादी दृष्टि में निहित है। धर्म जीवन का आधार है, अर्थ उसका साधन है, काम उसकी ऊर्जा है और मोक्ष उसका परम लक्ष्य है। इन चारों

---

[7] भगवद्गीता - १८.५४

[8] मीमांसा सूत्र - १.१.१

[9] ब्रह्मसूत्र - १.१.१

[10] "तस्य हेतुरविद्या"। सांख्यकारिका - ६४

[11] महाभारत के शान्तिपर्व - १६१.११

का सन्तुलन ही जीवन को पूर्णता प्रदान करता है। इन सभी चिन्तनों से स्पष्ट होता है कि पुरुषार्थ चतुष्टय का लक्ष्य केवल भौतिक सुख या आध्यात्मिक अनुभव तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन के चारों पहलुओं में सामञ्जस्य स्थापित करना है। क्योंकि सन्तुलित जीवन व्यक्ति को सामाजिक जिम्मेदारी, नैतिक प्रगति और आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करता है। अतः इन चारों पुरुषार्थों को जानना बहुत ही आवश्यक है।

धर्म

जिसे धारण किया जाए वह धर्म है। पुरुषार्थ-चतुष्टय में प्रथम पुरुषार्थ धर्म को जीवन की नैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक चिन्तनों का नींव माना गया है, क्योंकि यह न केवल व्यक्ति के कर्म और आचरण की दिशा निर्धारित करता है, बल्कि अन्य तीन पुरुषार्थ जैसे अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए आधार प्रदान करता है। वेदों में धर्म को मनुष्य और प्रकृति के बीच सन्तुलन स्थापित करने वाला आधार बताया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि कर्म को सही रूप में, नियमों के अनुसार करने से ही धर्म की प्राप्ति होती है।[12] सामवेद[13] और यजुर्वेद[14] में धर्म कर्मकाण्ड और यज्ञों के माध्यम से सामाजिक और धार्मिक कर्तव्यों का पालन करने के रूप में प्रस्तुत है। अथर्ववेद में धर्म व्यक्तिगत, सामाजिक और पारिवारिक कर्तव्यों के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग के रूप में निरूपित है।[15] महाभारत में धर्म के वारे में कहा गया है कि -

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यः स्यात् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥[16]

---

[12] ऋग्वेद - १.९३.६

[13] सामवेद - ३९४

[14] यजुर्वेद १९.३०

[15] अथर्ववेद - १२.१.१

[16] महाभारत, शान्तिपर्व - १०९.११

अर्थात् धारण को ही धर्म कहा जाता है। धर्म वह है जो समाज और प्रजाओं को धारण करते हुए उनका पालन-पोषण करता है। अतः जिन नियमों, कर्तव्यों और सद्गुणों को धारण करने योग्य हैं और जो संसार को स्थिरता प्रदान करते हैं, वही वास्तविक धर्म है। और भी कहै है कि -

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

तस्माद्धर्मं न त्यजामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।[17]

अर्थात् धर्म ही विनाश और रक्षा का आधार है। यदि धर्म का पालन किया जाए, तो यह सभी को सुरक्षित रखता है। और यदि धर्म का उल्लङ्घन किया जाए, तो सब कुछ नष्ट हो जाता है। इसलिए किसी भी स्थिति में धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए, क्योंकि धर्म नष्ट होने पर सम्पूर्ण मानवता सङ्कटापन्न हो जाता है।

भगवद्गीता में धर्म को कर्तव्य और सामाजिक न्याय का आधार बताया गया है, गीता में कहा गया है –"स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः"[18] अर्थात् अपने कर्तव्य का पालन दूसरों के अनुचित मार्ग के आचरण से श्रेष्ठ है।

आचार्य मनु के अनुसार वेद, स्मृति, सदाचार और मन को प्रसन्न करनेवाले सभी कर्तव्यानुष्ठान को धर्म नाम से अभिहित किया है।[19] इसके अतिरिक्त धृतिः, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य एवं अक्रोध यह सभी धर्म विषय है –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥[20]

---

[17] मनुस्मृति - ८.१५

[18] भगवद्गीता - ३.३५

[19] मनुस्मृति- २.१२

[20] मनुस्मृति - ६.९२

आचार्य चाणक्य के अनुसार - धर्मेण धार्यते लोकः।[21] अर्थात् यह लोक धर्म के द्वारा हि सन्तुलित होता है। भर्तृहरि के वचन अनुसार संसार में केवल मनुष्य ही धर्मयुक्त होते है। क्योंकि संसार में केवल मनुष्य ही विवेकशील प्राणी है। आहार निद्रा, भय मैथुन्यादि विषय में मनुष्यों और पशुओं में कोई भेद नही होती। अतः मनुष्य को धर्मवान् होना चाहिए।

वैशेषिकदर्शनकार महर्षि कणाद के अनुसार - यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्मः।[22] अर्थात् जिसके द्वारा इहलोक में उन्नति और परलोक में मोक्ष प्राप्ति होती है, वह धर्म है।

उपनिषदों में धर्म को मोक्ष की साधना और आत्मबोध के मार्ग के रूप में देखा गया है, श्वेताश्वतरोपनिषद् में स्पष्ट से धर्म को मोक्ष तथा आत्मज्ञान प्राप्त करने का परम उपाय बताया गया है।[23] अर्थशास्त्र में भी धर्म को अन्य पुरुषार्थों का मार्गदर्शक माना गया है: "अर्थमूलौ धर्मकामौ"[24]। धर्म ही वह आधार है जो जीवन को नैतिक दिशा, सामाजिक न्याय, संयमित इच्छाएँ और आत्मबोध प्रदान कर सकता है। इसलिए पुरुषार्थ-चतुष्टय का प्रथम और अपरिहार्य आधार धर्म है। और भी कहते है -

धर्मादर्थ प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्व धर्मसारमिदं जगत् ॥[25]

धर्म के आचरण से ही व्यक्ति को वास्तविक अर्थ और साधन प्राप्त होते हैं। केवल श्रम या प्रयास से अर्जित धन स्थायी एवं सार्थक नहीं होता। धर्म के मार्ग पर चलकर ही सही अर्थ प्रप्त होता है। इसी प्रकार, सुख और आनन्द भी धर्म से उत्पन्न होते हैं। जो व्यक्ति धर्म के अनुसार कर्म करता है, उसका जीवन सन्तुलित, शान्त और सन्तोषपूर्ण रहता है। धर्म का आचरण करने से न केवल भौतिक लाभ, बल्कि

---

[21] चाणक्यसूत्र

[22] वैशेषिकदर्शन (कणादसूत्र) - १.१.२

[23] श्वेताश्वतरोपनिषद् - २.१२

[24] अर्थशास्त्र - १.७.६

[25] बाल्मिकी रामायण, अरण्यकाण्ड - ९.३०

समाज में सम्मान, प्रतिष्ठा और आन्तरिक सन्तोष भी प्राप्त होता है। इस प्रकार, संसार का सार और स्थिरता धर्म में ही निहित है। यही कारण है कि धर्म आज भी जीवन का आधार और मार्गदर्शक के रूप में समाज में प्रतिष्ठित है।

अर्थ

पुरुषार्थ-चतुष्टय में द्वितीय पुरुषार्थ अर्थ जीवन की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने का आधार है, क्योंकि मनुष्य के जीवन की सन्तुलित प्रगति तभी सम्भव है जब उसकी आवश्यकताएँ, संसाधन और भौतिक सुरक्षा सुनिश्चित हों। अर्थ पुरुषार्थ का वास्तविक मतलब केवल सम्पत्ति और धन के सङ्ग्रह तक सीमित नहीं है, बल्कि यह धर्म और नैतिकता के साथ सन्तुलित होकर जीवन को स्थायित्व और समाज में न्याय प्रदान करता है। वेदों में अर्थ को सामाजिक व्यवस्था और कल्याण का माध्यम माना गया है। यजुर्वेद में कहा गया है कि अर्थ व्यक्ति के जीवन का सञ्चालन और साधन है।[26] मनुस्मृति में स्पष्ट किया गया है कि अर्थ का उद्देश्य केवल स्वार्थ नहीं, बल्कि धर्म की पालन और समाज के कल्याण में योगदान देना है।[27]

अर्थ व्यक्ति को जीवन के भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम बनाता है, जिससे वह समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त करता है। अतः जीवन में अर्थ की भूमिका अपरिसीम है। आचार्य चाणक्य भी कहते है - वृत्तिमूलमर्थः, अर्थमूलौ धर्मकामौ[28] । अर्थात् बिना अर्थ के धर्म एवं काम अधुरा रह जाता है। अर्थ इन दोनों धर्म एवं काम पुरुषार्थों का प्राणतत्त्व है। समाज में भी निर्धन और धनवान् के व्यवहार में अनेक अन्तर दिखने को मिलता है। धनवान् को सम्मान और निर्धन को उपेक्षा किया जाता है।[29] शुक्रनीति के अनुसार जो व्यक्ति सामान्य धनार्जन से ही सन्तुष्ट हो जाता है, इश्वर भी उसका कल्याण नहीं कर सकता। हमारे शास्त्रीय परम्परा भी यही कहता है कि "प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्"। और

---

[26] यजुर्वेद - ३.१८

[27] मनुस्मृति - ४.१२

[28] कौटिल्य अर्थशास्त्र १.७.६

[29] चाणक्यसूत्र - ४.५९

भी करहे है कि "धनाद्धर्म ततो सुखम्"। अर्थ का उपार्जन नैतिक मार्ग करना चाहिए। तभी नैतिकता से उपार्जित अर्थ से धर्म एवं उस धर्म के अनुसार आचरण करने से ही मनुष्य को सुख प्राप्त होता है।

महाभारत और अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों में भी आर्थिक साधनों को जीवन के कर्तव्यों के पूरक रूप में देखा गया है। न्याय और सामाजिक व्यवस्था तभी सुचारु रहती है जब अर्थ उचित साधन और विवेकपूर्ण उपयोग के साथ अर्जित किया जाए। आजीविका, व्यवसाय और आय के साधन जीवन के आधारभूत स्थायित्व के लिए आवश्यक हैं। यदि व्यक्ति आर्थिक रूप से असुरक्षित रहेगा तो धर्म, काम और मोक्ष के आचरण में बाधा उत्पन्न होगी। अतः अर्थ-पुरुषार्थ जीवन की भौतिक स्थिरता, नैतिक सन्तुलन और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने का माध्यम है। यह केवल धन या भोग का साधन नहीं, बल्कि जीवन के अन्य पुरुषार्थों के आचरण और व्यक्ति एवं समाज के समग्र विकास के लिए आवश्यक स्तम्भ है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में धन अर्जन केवल स्वार्थ या लालच के लिए नहीं, बल्कि सत्य, न्याय और धर्म के अनुसार सन्तुलित भोग के लिए किया जाता है। ईशावास्योपनिषद् में मनुष्य को त्याग पूर्वक भोग करने का उपदेश दिया है -

तेन त्यक्तेन भुञ्जिथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।

अर्थात् मनुष्य की जितनी आवश्यकता हो, उतना ही ग्रहण करे। वह यह न सोचे कि यह सब कुछ केवल मेरा ही है, क्योंकि इस संसार में किसी वस्तु पर किसी का स्थायी अधिकार नहीं है। अतः अर्थ पुरुषार्थ का आचरण सम्पूर्ण समाज की सर्वाङ्गीण कल्यण की दृष्टि से करना चाहिए।

काम

पुरुषार्थ-चतुष्टय में तृतीय पुरुषार्थ 'काम' जीवन में इच्छा, सुख और सृजनात्मकता की आवश्यकता को व्यक्त करता है। काम केवल भौतिक सुख या कामवासना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति को मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक रूप से प्रतिष्ठित करने का माध्यम है। काम का अर्थ है इच्छा। काम्यते इति कामः अर्थात् विषय और इन्द्रियों के सम्पर्क से उत्पन्न होनेवाली इच्छा ही काम है।

काम को यदि धर्म और अर्थ के सन्तुलन के साथ अपनाया जाए तो व्यक्ति को सृजनशीलता और मानसिक सन्तुलन प्रदान करता है। नासदीयसूक्त में काम को ही सृजन की प्रेरणा बताया गया है। काम

केवल इन्द्रियसुख नहीं, बल्कि ब्रह्माण्डीय चेतना की वह गतिशील शक्ति है जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई।[30] उपनिषदों में भी काम को "संकल्प शक्ति" कहा गया है। मनुसंहिता मे कहा गया है कि काम ही समस्त क्रियाओं का मूल प्रेरक तत्व है। बिना इच्छा के कोई भी कर्म सम्भव नहीं है। मनुष्य का हर कार्य चाहे वह लौकिक हो या आध्यात्मिक, किसी न किसी इच्छा, आकाङ्क्षा या प्रयोजन से ही प्रेरित होता है।[31]

काम को जीवन में आनन्द और सृजनशीलता का आधार माना गया है। तदनुसार इच्छाओं और कार्यों के माध्यम से जीवन को सन्तोष और पूर्णता प्राप्त होती है। कामसूत्र में काम-पुरुषार्थ का उद्देश्य स्पष्ट किया गया है कि इच्छाओं और कामुकता का सन्तुलित और संयमित रूप जीवन के सुख और सृजन के लिए आवश्यक है, और इसे धर्म और अर्थ के बिना नकारात्मक प्रभावों से बचाया जाता है।[32]

गीता में कहा है कि काम ही वह मानसिक प्रेरणा है जो कर्मों को जन्म देती है। यदि वह स्वभावतः असन्तुलित हो, तो क्रोध आदि विकृतियाँ उत्पन्न कर सकती है। इच्छाएँ हो सकती हैं, लेकिन उन्हें संयम और धर्म की मर्यादा में रखना चाहिए।[33]

अतः काम का उद्देश्य केवल सुख प्राप्त करने तक नहीं, बल्कि जीवन को सौन्दर्यपूर्ण, सृजनात्मक और आनन्दपूर्ण भी बनाना है। अतः पुरुषार्थ-चतुष्टय में काम का आचरण जीवन को सन्तुलित, भावनात्मक रूप से स्वस्थ और सामाजिक रूप से सुसङ्गठित बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

मोक्ष

पुरुषार्थ-चतुष्टय में चतुर्थ पुरुषार्थ 'मोक्ष' जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य और अन्तिम उद्देश्य है, क्योंकि यह व्यक्ति को आध्यात्मिक शान्ति, आत्मबोध और मानसिक स्थिरता प्रदान करता है। मोक्ष केवल मृत्यु के पश्चात मुक्ति नहीं है, बल्कि जीवन में ही नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक सन्तुलन प्राप्त करने का

---

[30] नासदीय सूक्त - १०.१२९.४

[31] मनुस्मृति - २.४

[32] कामसूत्र – १.२.१४

[33] भगवद्गीता - ३.३७

मार्ग है। वेदों और उपनिषदों में मोक्ष को जीवन के अन्तिम उद्देश्य के रूप में परिभाषित किया गया है। कठोपनिषद् में कहा गया है –"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः न मेधया न बहुना श्रुतेन"[34], अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार और शान्ति बाहरी साधनों से नहीं, बल्कि स्वयं की साधना, ज्ञान और आत्मबोध से प्राप्त होती है।

धर्म, अर्थ और काम के आचरण के बाद ही मोक्ष का मार्ग सरल और प्रभावी होता है। भगवद्गीता में कहा गया है –"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जयः",[35] अर्थात् संसार में रहते हुए भी आत्मा को कर्मयोग और संयम के माध्यम से स्थिर रखना है। मोक्ष का पालन व्यक्ति को आन्तरिक सन्तोष, मानसिक स्थिरता और सामाजिक उत्तरदायित्व के बीच सामञ्जस्य स्थापित करने में मदद करता है। स्मृति और महाभारत में भी मोक्ष को केवल सांसारिक सुखों से ऊपर उठकर जीवन का स्थिर उद्देश्य माना गया है।

मोक्ष-पुरुषार्थ व्यक्ति को मानसिक शान्ति, आत्म-साक्षात्कार और जीवन के उद्देश्य की स्पष्टता प्रदान करता है। योग, ध्यान और संयमित जीवनशैली मोक्ष-पुरुषार्थ की आधुनिक अभिव्यक्तियाँ हैं। इसलिए पुरुषार्थ-चतुष्टय में मोक्ष न केवल अन्तिम लक्ष्य है, बल्कि जीवन को समग्र, सन्तुलित और अर्थपूर्ण बनाने के लिए अपरिहार्य है।

वर्तमान समय में पुरुषार्थ-चतुष्टय की आवश्यकता

वर्तमान युग विज्ञान की उन्नति, तकनीकी प्रगति और भौतिक सुख-सुविधाओं का युग है। आज मनुष्य अन्तरिक्ष को जीत लिया है, परन्तु अपने भीतर की शान्ति खो दी है। सभ्यता की अभूतपूर्व अग्रगति ने जीवन के बाहरी सौन्दर्य और वैभव तो बढ़ाया है, परन्तु उसके भीतर का सन्तुलन और सामञ्जस्य अस्थिर हो गया है। आधुनिक समाज की यह विडम्बना है कि जहाँ जीवन के साधन तो अत्यधिक बढ़ गए हैं, वहीं जीवन के उद्देश्य धुँधले पड़ गए हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय जीवन दर्शन का

[34] कठोपनिषद् - १.२.२३

[35] भगवद्गीता - ३.३०

पुरुषार्थ-चतुष्टय आज भी उतना ही प्रासङ्गिक है जितना प्राचीन काल में था, क्योंकि यह जीवन को भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी स्तरों पर सन्तुलित रखने की शिक्षा देता है।

विज्ञान की तीव्र प्रगति ने मनुष्य को सुविधा दी है, किन्तु शान्ति नहीं। मशीनों पर निर्भरता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में मानव-संवेदनाएँ धीरे-धीरे क्षीण हो रही हैं। व्यक्ति का सम्पर्क प्रकृति और परिवार दोनों से टूटता जा रहा है। इस परिस्थिति में धर्म पुरुषार्थ की आवश्यकता इसलिए है कि वह मनुष्य को नैतिक मर्यादा, सह-अस्तित्व और कर्तव्यबोध का बोध कराता है। धर्म सिखाता है कि विज्ञान तभी कल्याणकारी है जब वह मानवता की सेवा के लिए प्रयुक्त हो। भगवद्गीता में कहा गया है — "लोकसङ्ग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि।"[36] अर्थात् अपने कर्मों के माध्यम से समाज का कल्याण करना ही सच्चा धर्म है।

आज विज्ञान का उपयोग विनाश के लिए भी हो रहा है, तो धर्म की यह चेतना मानवता के अस्तित्व के लिए अपरिहार्य हो गई है। सभ्यता की अग्रगति ने मनुष्य को अधिक पाने की दौड़ में ऐसा व्यस्त कर दिया है कि जीवन का सार ही भुला दिया गया है। भौतिक समृद्धि ही सफलता का पर्याय बन गई है। यह स्थिति अर्थ-पुरुषार्थ की विकृतियों को दिखाती है।

अर्थ का उद्देश्य केवल सङ्ग्रह नहीं, बल्कि धर्मसम्मत उपार्जन और लोककल्याण होना चाहिए। आज जब भ्रष्टाचार, शोषण और आर्थिक असमानता समाज के केन्द्र में हैं, तब धर्मानुकूल अर्थ का पुनर्स्थापन आवश्यक है।

बाह्य संस्कृति का अन्धानुकरण ने भारतीय जीवन-मूल्यों को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है। आत्मसंयम, कर्तव्य, त्याग और सादगी जैसी भारतीय विशेषताएँ विलुप्त होती जा रही हैं। भोगवाद और स्वच्छन्दता के प्रभाव से काम-पुरुषार्थ का स्वरूप भी विकृत हो गया है। इच्छाएँ अब संयमित नहीं, अपितु असीमित हो गई हैं। विज्ञापन और मनोरञ्जन की दुनिया ने जीवन को आकर्षण और दिखावे की वस्तु बना दिया है। परन्तु कामसूत्र का स्पष्ट निर्देश है —

---

[36] भगवद्गीता - ३.२०

"धर्मार्थयोः अनपेक्ष्य कामः नाचरेत्।"[37]

अर्थात् धर्म और अर्थ की उपेक्षा कर किया गया भोग पतन का कारण है। आज के सन्दर्भ में इसका अर्थ यह है कि भोग और विलास तभी उपयोगी हैं जब वे मर्यादा और संयम के भीतर रहें।

आधुनिक जीवन का सबसे बड़ा सङ्कट तनाव और अशान्ति है। विज्ञान ने शरीर को सुविधा दी है पर मन को शान्ति नहीं दी। व्यस्ततम जीवन, ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा और आत्मकेन्द्रित प्रवृत्तियाँ व्यक्ति को भीतर से शुष्क बना रही हैं। ऐसे समय में मोक्ष-पुरुषार्थ की आवश्यकता अत्यधिक है। मोक्ष का अर्थ केवल मृत्यु के बाद की मुक्ति नहीं, बल्कि जीवन में ही आत्मशान्ति और स्थैर्य प्राप्त करना है। यह शान्ति बाह्य साधनों से नहीं, बल्कि आत्मबोध और संयम से प्राप्त होती है।

आज की शिक्षा, अर्थनीति और संस्कृति तीनों क्षेत्रों में पुरुषार्थों के असन्तुलन ने समाज में असन्तोष और मूल्यहीनता को जन्म दिया है। मनुष्य अत्यधिक जानता है, परन्तु कम समझता है। बहुत अर्जित करता है, परन्तु कम अनुभव करता है। धर्म के अभाव में अर्थ अनैतिक होता है, अर्थ के बिना धर्म दुर्बल, और काम के बिना जीवन नीरस है। मोक्ष इन तीनों को सन्तुलन प्रदान करता है। जिसके जीवन में इन चारों का समन्वय है वही सच्चा पुरुषार्थवान् है।

वर्तमान सभ्यता ने मनुष्य को बाहर से आधुनिक बनाया है, परन्तु भीतर से अस्थिर। धर्म से प्राप्त नैतिकता, अर्थ से प्राप्त स्थिरता, काम से प्राप्त सृजनशीलता और मोक्ष से प्राप्त आत्मशान्ति —ये चारों मिलकर ही मानवता को पूर्णता प्रदान कर सकते हैं। यदि पुरुषार्थ-चतुष्टय की यह दृष्टि आज के समाज में पुनः प्रतिष्ठित हो जाए, तो विज्ञान मानवीयता का, अर्थ न्याय का, काम सौन्दर्य का और मोक्ष शान्ति का प्रतीक बन जाएगा।

निष्कर्ष

[37] कामसूत्र १.२.१

भारतीय जीवनदर्शन में पुरुषार्थ-चतुष्टय के चारों स्तम्भ यथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष व्यक्ति और समाज के समग्र विकास के लिए अपरिहार्य हैं। धर्म जीवन को नैतिक और सामाजिक दिशा देता है, अर्थ जीवन की भौतिक और सामाजिक स्थिरता सुनिश्चित करता है, काम इच्छाओं और सृजनशीलता के माध्यम से मानसिक और भावनात्मक सन्तुलन प्रदान करता है, और मोक्ष जीवन को आत्मबोध, आन्तरिक शान्ति और स्थिरता की ओर अग्रसर करता है।

प्राचीन काल से यह पुरुषार्थ चतुष्टय मानव कल्याण, सामाजिक न्याय और संस्कृतिक सुदृढता का मार्गदर्शन करता रहा है। आधुनिक युग में विज्ञान की अग्रगति, तकनीकी प्रगति और भौतिक समृद्धि के साथ साथ समाज में मानसिक अशान्ति, तनाव और सामाजिक असमानता जैसी समस्याएँ भी अधिक हो रहा है। ऐसे में पुरुषार्थ-चतुष्टय की प्रासङ्गिकता और भी अधिक हो रही है। इसका सन्तुलित आचरण जीवन को भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी स्तरों पर उद्देश्यपूर्ण और सुसंस्कृत बना सकता है।

अतः वर्तमान समाज में यदि धर्म से नैतिकता, अर्थ से स्थिरता, काम से सृजनात्मकता और मोक्ष से आत्मशान्ति का समन्वय स्थापित हो, तो व्यक्ति और समाज दोनों में सन्तुलन और सामग्रिक विकास सम्भव हो सकेगा। अतः पुरुषार्थ-चतुष्टय केवल प्राचीन दर्शन का सिद्धान्त नहीं, बल्कि आधुनिक जीवन में भी मानवता, न्याय, सौन्दर्य एवं शान्ति का अभिन्न मार्गदर्शक साबित हो सकेगा।